बोधपाहुड गाथा-४१-४४, गुरुवार, पोष शुक्ल ११,

दि. ७-१-१९७१, प्रवचन नं. १६८

अष्टपाहुड में यह बोधपाहुड। उसकी ४१ गाथा। उसका भावार्थ चल रहा है। अरिहन्त के स्वरूप का वर्णन करते हैं। अरिहन्त परमात्मा जो हुए, तीर्थंकरदेव, वे उनकी माता के कोख में आते हैं। कोई नर्कमें से और स्वर्गमें से (आते हैं)। कोई ऐसे ही कहीं से भी आ जाये ऐसा नहीं होता, एसा कहते हैं। परमात्मा मोक्षमें से नहीं आते। जिसे इस भव में पूर्ण पद प्राप्त होना है, अरिहन्त सर्व तीर्थंकर, हाँ ! वह कोई नर्कमें से भी आते हैं। जैसे 'श्रेणिक' राजा नर्कमें से आयेंगे। पहले तीर्थंकर होंगे। 'ऋषभदेव' भगवान आदि सब स्वर्गमें से आये थे। माता की कोख में तीन ज्ञान लेकर, क्षायिक समकित लेकर कितने तो आते हैं। उनका वर्णन करते हैं। फिर उनका जन्म होता है। गर्भकल्याणक इन्द्र करते हैं। यहाँ तक अपने आया है।

'चार प्रकारके देव-देवी एकत्र होकर आते हैं, शची (इन्द्राणी) माता के पास जाकर गुप्तरूपसे प्रभुको ले आती है,...' माता जब जन्म देती है... भाषा तो क्या करे ? माता जन्म दे ? लेकिन व्यवहार में बोलने में क्या आये ? देव ऐसा करे.. देव ऐसा करे, ऐसा आता है कि नहीं ? पण्डितजी ! करते हैं ?परन्तु बोलने में क्या आये ? जब भगवान की माता प्रभु को जन्म देती है तब इन्द्राणी माता के पास जाती है, गुप्तरूप से प्रभु को ले जाती है। गुप्तरूप से ले जाय। 'इन्द्र हर्षित होकर हजार नेत्रों से देखता है।' हजार नेत्र करके इन्द्र भगवान को ऐसे देखते हैं। तर्क हो सकता है कि नेत्र से देखना और ये सब क्या है ? वह सब सहज बनता है। ऐसा है। समझ में आया ? हजार नेत्र बनाते हैं। नेत्र तो रजकण की अवस्था है।

मुमुक्षु :- इतने सारे बन सकते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- भाषा क्या कहे ? उसे ऐसा बनता है। महापुण्यशाली पुरुष। इन्द्र माने ? महापुण्यवन्त प्राणी है। एकावतारी है। एक भव करके मोक्ष जानेवाले देव हैं। और यह तो तीर्थंकर परमात्मा उस भव में मोक्ष जानेवाले हैं। उनके शरीर की सुन्दरता और प्रत्येक अवयव इतने सलोने सुन्दर होते हैं कि देव हजार नेत्र करके देखे फिर भी तृप्ति नहीं होती। आत्मा के आनन्दरूप की तो बात ही क्या करनी ! भगवान को उस वक्त भी अतीन्द्रिय आनन्द है।

जन्म हुआ तब भी अन्तर आत्मा का भान लेकर जन्म लिया है। सम्यग्दर्शन सहित है। आत्मानन्द के भानसहित हैं। लेकिन उनके शरीर की स्थिति भी ऐसी होती है कि हजार नेत्र करके देखते हैं। और इन्द्र अपनी गोद में लेते हैं। इन्द्र अपनी गोद में लेते हैं। लो ! गोद में

ले सकते हैं ? 'त्रंबकभाई' ! 'त्रंबकभाई'ने अभी प्रश्न किया था कि यह सब करते हैं.. करते हैं.. आता है, यह क्या होगा ?

मुमुक्षु :- यह सब बाहर से बनता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बनता है। बनता है उसमें निमित्तत्व कौन है उसकी बात करते हैं। पण्डितजी ! नहीं तो एक रजकण को भी कोई बदल सकता है।लेकिन वह व्यवहार करनेवाले का निमित्त कौन था ? इतना बतलाने को भगवान को हजार नेत्र से देखे ऐसा कहा। गोद में ले। अभी तो पहले दिन का शरीर है न ?

'ऐरावत हाथी पर चढ़कर...' ऐरावत नाम का हाथी होता है, उस पर वे चड़ते हैं। भगवान को लेकर चड़ते हैं। 'मेरु पर्वतपर जाता है,...' मेरु पर्वत है। देखिये ! तीर्थंकर ऐसे होते हैं। ऐसे भगवान-भगवान करे और भगवान में ठिकाना नहीं हो। पुण्य का नहीं और पवित्रता का भी नहीं। इसप्रकार पहचान करवाते हैं। बोधपाहुड। अरिहन्त की वास्तविक पवित्रता कितनी होती है और उनकी पुण्य प्रकृति भी अथाह होती है। इन्द्र भी जिनके पास दास होकर वर्तते हैं। समझ में आया ? 'मेरु पर्वतपर जाता है, ईशान इन्द्र छत्र धारण करता है,...' शक्रेन्द्र जो हैं, पहले देवलोक के इन्द्र और उनकी इन्द्राणी, वे दोनों पति-पत्नी एकावतारी हैं। एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। देव की अन्तिम देह है। वहाँ से फिर मनुष्य होकर दोनों मोक्ष जायेंगे। ऐसे शक्रेन्द्र भी भगवान को गोद में लेकर मेरु पर्वत पर जाते हैं। 'ईशान इन्द्र छत्र धारण करता है,...' दूसरे देवलोक का इन्द्र। यह पहले देवलोक के इन्द्र हैं-शक्रेन्द्र। दूसरा ईशान इन्द्र छत्र माथे पर रखता है। 'सनतकुमार, महेन्द्र इन्द्र चँवर ढ़ोरते हैं,...' तीसरे देवलोक का इन्द्र-सनतकुमार।

मुमुक्षु :- इन सब की नियुक्त हो गई होगी ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- सब व्यवस्थित ही है। ऐसी जिनकी पुण्य प्रकृति है। तीर्थंकर परमात्मा किसको कहें ! उनका अवतार कौन ?वे आत्मा कौन ? उनका शरीर कौन ? उनके पुण्य कौन ?वह अलग चीज होती है। वर्तमान में यहाँ नहीं है इसलिये उनका वर्णन करते हैं। आप किसी को भी तीर्थंकर मान लोगे, ऐसा नहीं। समझ में आया ?

'सनतकुमार, महेन्द्र...' दो देवलोक हैं। तीसरा देवलोक सनतकुमार, चौथा देवलोक महेन्द्र। उनके दो इन्द्र भगवान को दोनों ओर चँवर ढ़ोरते हैं। सुधर्म इन्द्र गोद में लेते हैं, ईशान इन्द्र छत्र ढ़ोरते हैं, तीसरे और चौथे देवलोक के इन्द्र चँवर ढ़ोरते हैं। ऐसी पुण्य प्रकृति होती है, इसलिये ऐसा सहज बनता है। तब इन्द्र करते हैं, ऐसा कहने में आता है। ऐसी बात है।

मुमुक्षु :- सब कहकर उसका निषेध करना..

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ, वह तो 'कमलभाई' ने सुबह प्रश्न किया इसलिये यह स्पष्टीकरण करना पड़े। यह सब करते हैं.. करते हैं.. चल क्या रहा है ? अभी प्रश्न किया। करते हैं, ऐसी भाषा तो दूसरी क्या हो ? वहाँ से आये, यहाँ देखा, भगवान को ले गये। ले गये अर्थात् भगवान का शरीर शरीर के कारण जाता है। परन्तु गोद में लेकर जाते हैं, ऐसे उनका व्यवहार निमित्त है न ? इसलिये निमित्त से बात होती है। नहीं तो भगवान का शरीर तो अपनेआप ही चलता है। 'रतिभाई' ! भगवान ऐसे होते हैं। तीर्थंकर अरिहन्त। जैन में रहनेवाले को यह मालूम नहीं कि तीर्थंकर कैसे होते हैं। फिर इसे-उसे भगवान माने। ऐसा नहीं है, ऐसा कहते हैं।

'सनतकुमार, महेन्द्र इन्द्र चँवर ढ़ोरते हैं...' कहिये, समझ में आया ? ये सनतकुमार। ए..! 'वजुभाई' ! क्या ?माने ? तीसरे देवलोक का इन्द्र।

मुमुक्षु :- भगवान को पसीना दो होता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यहाँ कहाँ पसीने की बात है ? यह तो पुण्य की ऋद्धि ऐसी होती है। यह तो 'बहिन' का याद आ गया-सनतकुमार का। 'बहिन' दूसरे भव में सनतकुमार में थे न ? इसलिये यहाँ वह याद आ गया। समझ में आया ? 'वजुभाई' को यही कहा। 'वजुभाई'आ समझे के नहीं ?सनतकुमार में 'बहिन' थी। उनका जीव। इससे पूर्वमहाविदेह में थी। उससे पहले सनतकुमार में थी।

मुमुक्षु :- आपके श्रीमुख से सुना था।

पूज्य गुरुदेवश्री :- यह तो सनतकुमार शब्द आया वहाँ 'बहिन' याद आयी। इसलिये मैंने आप को थोड़ा... आपको कहा, समझे थे के नहीं ?नहीं ?देखिये ! ये इनको दोनों बंधु हैं। समझ में आया ? तीसरे देवलोक में 'बहिन' का जीव था। फिर महाविदेह में वहाँ से तीसरे देवलोकमें से आये हैं।

'सनतकुमार, महेन्द्र इन्द्र चँवर ढ़ोरते हैं,...' तीर्थंकर को। समझ में आया ? 'मेरुके पांडुकवनकी पांडुकशिलापर...' मेरु पर्वत है न बीच में ? यह जम्बू द्विप एक लाख योजन का (उसके बीच में) 'मेरुवनकी पांडुकशिलापर...' पांडुक वन है। उसमें बड़ी पत्थर की पाण्डुक शीला है। 'सिंहासनके ऊपर प्रुभको बिराजमान करते हैं,...' आहा..हा...! देखोने ! कितने पुण्य है ! अभी तो एक दिन के हैं तो इन्द्रों लेकर जाते हैं। दूसरे को हवा लगे तो बीच में ही मर जाय। सही है कि नहीं ?

मुमुक्षु :- अभी कलश चढायेंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अभी तो कलश चढायेंगे बाद में। यह तो एक दिन के बालक हैं। अभी तो जन्म लिया है और ले जाते हैं। उनका शरीर भी इतना मज़बूत होता है। आत्मा तो अन्तर केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। ऐसा तो लेकर आये हैं, तैयारी करके। त्रिकाल ज्ञान परमात्मा। समझ में आया ?

यहाँ प्रभु को वहाँ स्थापित करते हैं-बिठाते हैं। 'सब देव क्षीरसमुद्रसे एक हजार आठ कलशोंमें....' जन्म हुए बालक को एक कलश पानी का डाले तो मर जाय। 'नवनीतभाई' ! बिलकूल नया जन्म हुआ हो तो।

मुमुक्षु :- ये होंगे कितने ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- इतने। होते तो छोटे हैं। उस समय इतना छोटा शरीर होता है। बालकपने में कितना शरीर होता है। सात हाथ का। लेकिन अपने यहाँ इतना होता है, उनका थोड़ा बड़ा होता है। सात हाथ के थे न ? 'महावीर' भगवान की बात हैं, हाँ ! यह तो समुच्चय बात है। पाँचसौ धनुषवाले को उनके प्रमाण में होता है। उनके प्रमाण में शरीर होता है न ?

कहते हैं कि, 'क्षीरसमुद्रसे सारे देव...' अर्थात् बहुत देव। सभी देव तो कहाँ से... 'क्षीरसमुद्रसे एक हजार आठ कलशोंमें...' आठ योजन का बड़ा कलश। इतना छोटा कलश नहीं। आठ योजन का ऐसा ऊँचा होता है। चार योजन का तो बीच में पेट का भाग होता है। इतना बड़ा कलश। ऐसे एक हजार और आठ कलश। आहा..हा...!

मुमुक्षु :- क्षीरसमुद्र का पानी ठण्डा नहीं होता होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पानी तो ठण्डा होता है, वहाँ कहाँ गर्म करके रखे ? यहाँ कोई आपके यहाँ पानी के निकलते हैं.. क्या कहते हैं उसे ? नलमें से पानी निकलता है वह थोड़ा गर्म होता है। ऐसा वहाँ नहीं होता। पानी चाहे जैसा हो। तीर्थंकर यानी वज्रनाराच संहनन। समचतुरस्रसंस्थान। देव ऐसे एक हजार नेत्र करे फिर भी तृप्ति (नहीं होती)। इन्द्र ! इन्द्र यानी कौन ? असंख्य देवों का लाडला स्वामी। ऐसे देखते हैं फिर भी तृप्ति नहीं होती। उनके पुण्य कितने ! प्रत्येक अवयव में सुडोलता। सुडोलता और सुन्दरता। यह पुण्य प्रकृति का वर्णन करते हैं। ऐसे पुण्य होते हैं, ऐसे पवित्र होते हैं उनको ऐसा होता है। ऐसे ही भगवान कह दे और हो जाय, ऐसा भगवान को होता नहीं। समझ में आया ?

'देव-देवांगना गीत नृत्य वादित्र बड़े...' देव और देवांगना, गीत और नाचना। नाचते हैं।वादित्र 'बड़े उत्साह सहित...' फिर ऐसे ऐं.. ऐं.. करके नहीं। हमें करना पड़ता है, ज़बर्दस्ती करते हैं, ऐसा नहीं। उत्साह सहित। आहा..हा...! तीनलोक के नाथ परमात्मा। एक समय में जो तीनकाल को जानेंगे और जिनकी वाणी से बहुत जीवों का कल्याण का निमित्त होनेवाले हैं। उनकी .. बात क्या करनी ?

मुमुक्षु :- इसे ज्ञानपुण्य गिनना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- पुण्य।

मुमुक्षु :- ज्ञान का पुण्य ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- ज्ञान का पुण्य नहीं। पुण्य होता है। भिन्न। ज्ञान की भूमिका में आनन्द की दशा में बन्धे हुए पुण्य। पुण्य अलग है और ज्ञान अलग है। लेकिन धर्मदशा प्रगट हुई हो- आत्मा का आनन्द-उस भूमिका में अभी ऐसा शुभभाव आता है उसका पुण्य बन्ध जाता है। अच्छा अनाज पकता है वहाँ डंठल भी अच्छा होता है। यह तो आप को मालूम होगा कि नहीं ? क्यों दरबार ? अनाज अच्छा पके तो उसका डंढल भी अच्छा होता है। यहाँ तो अभी नहीं लेकिन (संवत) १९७३ की बात है। १९७३, भाई ! बहुत बारिश हुई थी। दरबार को याद नहीं होगा। १९७३ की साल, बहुत वर्ष हो गये। कितने हुए ? ५४. छह महिने बारिश हुई थी। चैत से आसोज तक। यहाँ 'दामनगर' चातुर्मास था। वहाँ से 'आहोदर'। 'बचुभाई' का था न ? 'आहोदर' गये थे तो रास्ते में डांठल देखो तो.. ओहो..! इतनी बारिश हुई थी... इतनी हुई थी.. ५४ वर्ष हो गये। बड़े-बड़े डांठल हुए थे, हाँ ! कुछ बिगड़ा नहीं था और बहुत बारिश हुई थी। विहार में रास्ते में.. .. अनाज..अनाज .. खेत। ओहो..हो..! डांठल ऐसे और जुआर के दाने इतने बड़े। १९७३ की बात है, दरबार !हमने तो बहुत कुछ देखा है न। हज़ारों गाँवों का रास्ते से विहार किया है न। छ हज़ार, सात हज़ार गाँव विहार किया है। समझ में आया ?

१९७३ ऐसी बाहिश और ऐसे डांठल हुए थे, गन्ने जैसे मोटे, हाँ ! बाजरे का और जुआर का। बहुत बारिश हुई थी। हमारे 'दामोदर सेठ' के यहाँ खेत थे न। 'दामोदर सेठ' के यहाँ बहुत बड़े खेत थे। बहुत पैदाइश थी। चालीस हज़ार की पैदाइश तो उन दिनों में थी। उन दिनों में, हाँ ! १९७३ की साल में। चालीस हज़ार। एक दस हज़ार का गाँव (उनका था)। बहुत होशियार थे इसलिये दस-दस डांठल सुतली से बाँधते थे। गिर नहीं जाय। बहुत बारिश थी न। दस-दस डांठल (बाँधे)। इतने-इतने बड़े डांठल। दस-दस डांठल को सुतली से

बाँधे। इसलिये ऐसे भी नहीं गिरे और ऐसे भी नहीं गिरे। पूरा खेत बाँधे। बाँध सकता है कि नहीं ?

मुमुक्षु :- कोई तो बाँध सकता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- कोई नहीं बाँध सकता। अपने कारण से परिणमता है। लेकिन व्यवहार से भाषा क्या बोले ? 'त्रंबकभाई' ! आहा..हा...!

'देव-देवांगना गीत नृत्य वादित्र बड़े उत्साह सहित प्रभुके मस्तकपर कलश ढारकर जन्मकल्याणका अभिषेक करते हैं,...' ऐसे सर पर पानी डाले। एक हज़ार और आठ कलश। देखो तो यह पुण्य की बात ! ऐसे उनके पुण्य होते हैं। केसर को गोनी में नहीं राखते। केसर तो डिब्बी के अन्दर या काँच के पात्र में रखा जाता है। वैसे इनकी आत्मा ही ऐसी है कि जहाँ उनका शरीर भी अलग प्रकार का है। परम औदारिक शरीर। हीरे की भाँति उनका कडक शरीर होता है। तब तो एक हज़ार और आठ कलश से अभिषेक करे तो भी भगवान बैठे होते हैं। पूरी दुनिया से अलग जात है। तीर्थंकर किसे कहें और उनकी पुण्य प्रकृति किसे कहें ! समझ में आया ?

'पीछे श्रृंगार, वस्त्र, आभूषण पहिनाकर...' फिर भगवानजी को... अभी तो एक दिन का बालक है। उसे श्रृंगार करे, वस्त्र, गहने पहनाकर। 'माताके मंदिरमें लाकर...' माता जहाँ हो वहाँ वापस घरपर... 'माताको सौंप देते हैं,...' माता को सौंपे। माता ! आहा..हा..! 'इन्द्रादिक देव अपने, अपने स्थान पर चले जाते हैं,...' इन्द्र अपने स्थानक चले जाते हैं। 'कुबेर सेवाके लिये रहता है।' बड़ा कुबेर है वह सेवा में-तहेनात में रहता है।

'तदनन्तर कुमार अवस्था...' भगवान की कुमार अवस्था होती है। एक तो वे सब क्षत्रिय होते हैं। दरबार ! जितने तीर्थंकर (होते हैं) सब क्षत्रिय होते हैं, बनिये नहीं। इसलिये क्षत्रिये होते हैं वे तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर होतें हैं वे क्षत्रिय होते हैं।

मुमुक्षु :- बाहर का ले लिया न...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह तो आये, बाहर-बाहर का होता है। दरबार ठीक कहते हैं। मूल जो तीर्थंकर भाग्यशाली होते हैं न ? इसलिये क्षत्रिय वीर्यवाले होते हैं। और पुण्य प्रकृति उनके शरीर की सुन्दरता इतनी होती है कि इन्द्र भी चकित हो जाते हैं। ऐसे तीर्थंकर होते हैं। अभी भगवान बिराजते हैं। वहाँ महाविदेह में 'सीमंधर' परमात्मा साक्षात् इसप्रकार वहाँ हैं। इसप्रकार सब हो गया है। समझ में आया ? भगवान केवलज्ञानपने बिराजते हैं और अरबों वर्ष रहेंगे। आहा..हा...!

इन्द्रों आकर पहले माता को प्रणाम करते है। हे रत्नकोख धारिणी ! ऐसे रत्न को कोख में रखनेवाली माता !प्रभु को तो धन्य है परन्तु माता तुझे भी धन्य है ! आहा..हा..! दो शंख का मोती। उनके माता और पिता भी ऐसे होते हैं। अल्प भव में मोक्ष जानेवाले। भगवान को लेकर नहीं, हाँ ! उनकी स्वयं की ऐसी लायकात होती है। माता और पिता। माता उस भव में नहीं जाती। स्त्री है न। पिता तो उस भव में मोक्ष जायेंगे। माता-पिता दोनों भी मोक्ष जानेवाले हैं। ऐसा तीर्थंकर जैसा आत्मा, महारत्न जिसकी कोख में सवा नव महिने रहे, उनके पिता (ऐसे होते हैं)। यह तो ऐसी वस्तु है, भाई ! आत्मा की महत्ता के आगे दूसरी महत्ता क्या है ? महाप्रभु चैतन्य है। रत्नाकर भगवान अनन्त गुण के रत्न से भरा है। आहा..हा...! उसका भान होकर जहाँ तीर्थंकर को केवलज्ञान होनेवाला है, उस भव में उनकी सेवा में देव को रखते हैं।

'तदनन्तर कुमार अवस्था तथा राज्य अवस्था भोगते हैं।' कोई-कोई राज अवस्था भोगते हैं। 'उसमें मनोवांछित भोग भोगकर...' लो ! मनोवांछित समकिती को है न ? वह तो इच्छा होती है उस अनुसार वहाँ आना होता है। उस अपेक्षा से (कहा)। परन्तु कथन क्या करना ? कथन तो सब (ऐसे होते हैं)। मनोवांछित, (तो क्या) भगवान को भोग की इच्छा होगी ? कहीं भी सुखबुद्धि मानते हैं ? वे तो समकिती ज्ञानी हैं। आत्मा में आनन्द मानते हैं। लेकिन अभी वीतरागता हुई नहीं तो थोड़ी इच्छा होती है। 'मनोवांछित भोग भोगकर फिर कुछ वैरागायका कारण पाकर...' वैराग्य कोई निमित्त मिले, बस, छूट जाता है, निकल जाता है।

मुमुक्षु :- कैसा निमित्त ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- निमित्त प्राप्त हो (अर्थात्) वे तो स्वयं ऐसे (हैं)। निमित्त तो दूसरे को क्यों नहीं हुआ ? उन्हे हो गया। जैसे 'ऋषभदेव' भगवान। निलान्जना देवी इन्द्रों ने रखी थी। भगवान सिंहासन पर बैठे थे। और देवियाँ ऐसे नाचे। उसमें एक देवी ऐसी रखी थी कि उस समय उसकी आयु (समाप्त हो गई)। उसी वक्त समाप्त। भगवान जानते हैं कि अहो..! इस देवी की आयु समाप्त हो गई। यहीँ नाचती थी। दूसरी देवी को रख दिया। ख्याल आ गया। आहा..हा..! यह तो एक निमित्त (था)। वैराग्य, एकदम वैराग्य। जातिस्मरण हुआ तो...

'संसार-देह-भोगोंसे विरक्त हो जाते हैं।' लो ! फिर भगवान संसार से, रागादि-देहादि और भोग, उससे विरक्त होते हैं। 'तब लौकांतिक देव आकर,...' लौकिंतक देव है। पाँचवे देवलोक के ब्रह्मचारी देव होते हैं। उन्हें इन्द्राणी देवियाँ नहीं होती। आठ सागर की आयु होती है। कम-ज्यादा नहीं। आठ सगरोपम की आयु। समझ में आया ? 'तब लौकांतिक देव

आकर, वैराग्य को बढानेवाली प्रभु की स्तुति करते हैं,..' वैराग्य को बढानेवाली प्रभु की स्तुति करे। अहो ! प्रभु ! निकलीये प्रभु नाथ ! जगत के कल्याण के लिये। जगत तड़प रहा है आप की देशना सुनने के लिये।

'फिर इन्द्र आकर 'तपकल्याणक' करता है।' लो ! दीक्षा कल्याणक। पहले गर्भ कल्याणक, दूसरा जन्मकल्याणक फिर यह। तपकल्याणक का अर्थ मुनिपना। मुनिपना ले, नग्न हो। 'पालकी में बैठाकर बड़े उत्सवसे...' पालकी में बिठाये। 'बड़े उत्सवसे वनमें ले जाता है...' वन में जाय। 'वहाँ प्रभु पवित्र शिलापर बैठकर पंचमुष्ठिसे लोचकर...' लो ! आहा..हा...! देखिये ! उस समय कैसी क्षण होगी ? उस प्रसंग को देखनेवाले, प्रसंग की प्रशंसा करनेवाले... वन में-जंगल में चले जाते हैं। फिर ... लोच करे।

'पंच महाव्रत अंगीकार करते हैं...' लो ! पंच महाव्रत। णमो सिद्धाणं। इतने शब्द बोलते हैं। णमो सिद्धाणं कहकर पंच महाव्रत लेते हैं। 'समस्त परिग्रहका त्यागकर...' वस्त्र की लंगोटी-एक धागा भी उन्हें नहीं होता। 'दिगम्बररूप धारणकर ध्यान करते हैं,...' लो ! दिगम्बर हो जाय।माता ने जन्म दिया ऐसे निर्विकारी-निर्दोष। आहा..हा...! ऐसी दशा प्राप्त हुए बिना मुनिपना हो सकता नहीं। देखिये ! ये तीर्थंकर हैं, मोक्ष जाना है उन्हें भी चारित्र लेने में ऐसी स्थिति होती है। वे नग्न दिगम्बर होते हैं। समझ में आया ? तीर्थंकर को भी वस्त्रसहित दीक्षा नहीं होती, तो दूसरे को कैसे हो सकती है ? वस्त्रसहित दीक्षा और साधु मानते हैं न ? वह वीतराग के मार्ग से विरूद्ध है। मुनि ऐसे नहीं होते। मुनि तो आत्मा के आनन्द में इतनी रमणता में होतेहैं कि जिन्हें वस्त्र लेने के विकल्प की वृत्ति भी नहीं होती। समझ में आया ?

'दिगम्बररूप धारणकर ध्यान करते हैं,...' अंतर में ध्येयपर लक्ष्य ले जाते हैं, एकदम। 'उसी समय मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो टजाता है।' चौथा ज्ञान उत्पन्न होता है, लो ! मति, श्रुत और अवधि तीन ज्ञान तो माता के पेट में लेकर आये होते हैं।दीक्षित होनेपर चौथा ज्ञान प्रगट होता है। 'फिर कुछ समय व्यतीत होनेपर तपके बलसे घातिकर्मकी प्रकृति...' लो ! तप के बल से। तप यानी इच्छानिरोध। आनन्द में रमते-रमते अंतर अतीन्द्रिय.. 'घातिकर्मकी प्रकृति ४७ तथा अघाति कर्मप्रकृति १६...' नाश करे।लो ! ४७ घाति की नाश करे, १६ अघाति की नाश करे। देखिये ! सब ४७-४७ का बहुत मेल है। प्रकृति ४७, शक्ति ४७, नय ४७, उपादान-निमित्त के दोहे ४७। अन्दर कुछ रहस्य होगा। ४७-४७ सब में आता है न ? इसके ४७। कहिये, ये उपादान-निमित्त तो अभी बनाये।

४७ घाथि. ज्ञानवरणी की ५, दर्शनावरणी की ९, मोहनीय की २८. अंतराय की ५. ४७. नाश करके केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। उसके साथ अघाति की १६ जाती है। 'त्रेसठ प्रकृतिका

सत्तामेंसे नाशकर केवलज्ञान उत्पन्नकर...' देखिये ! इतनी प्रकृति होती है, कर्म बोकी होते हैं, उसे इसप्रकार नाश करे।देखिये न ! कितना इस वस्तु का अस्तित्व सिद्ध करते हैं ! ऐसे ही भगवान हो जाय, कर्म-फर्म नहीं और कर्म की प्रकृति कितनी और कुछ नहीं, वह सब गप है। समझ में आया ?

'अनंतचतुष्टयरूप होकर...' अनन्त केवलज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त बल ऐसा भगवान को प्रगट होता है। परमात्मा अर्हन्त होते हैं। भले ही अभी शरीर है, सिद्ध नहीं हुए लेकिन परमात्म दशा पूर्ण होई गई। 'क्षुधादिक अठारह दोषोंसे रहित अर्हन्त होते हैं।' भगवान को आहार नहीं होता, पानी नहीं होता, रोग नहीं होता। 'रतिभाई' ! ये रोग कहते हैं कि नहीं ?

मुमुक्षु :- घर पर आहार के लिये आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :- घर पर आहार के लिये आते हैं, ऐसा कहते हैं। आहार करना हो तो कहाँ जाय ? भगवान को आहार होता नहीं। अर्हन्त परमात्मा अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण स्वरूप (प्रगट हुआ है)।

मुमुक्षु :- पातरा ले...

पूज्य गुरुदेवश्री :- पातरा भी नहीं होता, कुछ नहीं होता। एक शरीर है और वाणी-उपदेश निकलती है, पूर्व के कारण। बाकी कुछ नहीं होता। उन्हें क्या करना है ? वह तो सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण दशा है। आहा..हा...! वे आहार ले और उन्हें रोग हो, दवाई ले। दवाई लेने के बाद फिर रोग मिट जाय। शरीर को रोग ही नहीं होता। शरीर ही ऐसा होता है। देखिये न ! परमऔदारिक शरीर तो पहले से लेकर आये हैं। आहा..हा...!

मुमुक्षु :- शरीर हो और रोग नहीं हो, ऐसा होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- हाँ। शरीर हो तो रजकण नहीं होते ? यह लोहा है उसे कहाँ रोग है ? है ?

मुमुक्षु :- वह शरीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- तो वह भी शरीर है। इसे रोग है ? रोग इसे होता है ?

मुमुक्षु :- वह शरीररूप परिणमे...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह शरीररूप ही परिणमता है। इस शरीररूप परिणमते हैं ऐसे ही परमाणु.. हड्डी के.. वज्र जैसे मज़बूत। उसे रोग कैसा ? आहा..हा...! वृद्धावस्था नहीं होती। अरबो वर्ष जाय तो भी शरीर वैसा का वैसा दिखे। जैसे पहले देखे थे वैसे अभी हैं, वैसे के वैसे लगे। वृद्धावस्था दिखे नहीं। वृद्धावस्था होती नहीं। ऐसा तो शरीर होता है। रोग तो कैसे हो ? आहा..हा...!

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- वह सब कल्पित बातें। भाईने सुना तो हो न।

कहिये, समझ में आया ? 'क्षुधादिक...' तृषा। ... आता है न... बाहर। रोग हुआ और..वहाँ से ले आये। सब जूठी कल्पित बातें। ये तो अभी कोई निकला है।

मुमुक्षु :- नाम-ठिकाना देकर कहते हैं और जूठे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- नाम जूठे नहीं दे सकते ? ऐसे ही नाम देकर कहे, फलाने भाई ऐसा ले गये थे.. और फलाने भाई ऐसा ले गये थे।बनिये भी पहले नाम नहीं देते। दाम ज्यादा लेना हो तो (तो ऐसा कहे) इस दाम में फलाने ले गये हैं। ऐसा होता नहीं। सब जूठ।

मुमुक्षु :- बहीखाता बताये।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बहीखाता कहा न। बहीखाते में लिखा हुआ (बताये)। जूठा लिखे। यह दो लाख सेर गेहूँ इस भाव से ले गये हैं। लो ! इतनी थैली इस भाव से ले गये। होता है सब जूठा। ए..! 'जाधवजीभाई' ! क्यों दरबार ! ऊँचे दाम से बेचना हो इसलिये बड़े का नाम देकर बात करे, इतने दाम में तील लेकर गये हैं। लिखे इसलिये सच्चा हो गया ? आहा..हा...!

कहते हैं, 'क्षुधादिक...' १८ दोष नहीं है। तृषा नहीं, क्षुधा नहीं, रोग नहीं। 'अरहंत होते हैं।' उन्हे अरहंत कहने में आता है। देखिये ! इन्हें अरहन्त कहा। अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द प्रगट हुए हो और शरीर ऐसा हो। क्षुधा-तृषा नहीं होते। इन्द्र जिसे पूजे ऐसा। ऐसे अरहंत होते हैं।

'फिर इन्द्र आकर समवसरणकी रचना करता है...' इन्द्र आकर धर्मसभा की रचना करे। यहाँ समवसरण है न ? यहाँ तो साधारण है। इन्द्र आकर धर्मसभा की रचना करे। 'सो आगमोक्त अनेक शोभासहित...' बहुत शोभा। आगमोक्त है न ? समवसरण का बनाया है न ? भाईने-पण्डितजीने बनाया है न ?स्तुति। उसमें बहुत लिखा है। 'आदिपुराण'में से बनायी है।

'आगमोक्त अनेक शोभासहित मणिसुवर्णमयी कोट,...' लो ! मणि और सुवर्ण के कोट होते हैं, खाई होती है, वेदी होती है। चार दिशा। 'चार दरवाजे, मानस्तंभ,...' लो ! इतने बड़े चार मानस्तंभ होते हैं। भगवान बिराजते हैं वहाँ यह सब है।

'नाट्यशाला, वन आदि अनेक रचना करता है। उसके बीचे सभामंडप में बारह सभा,...' बैठे। आहा..हा...! समझ में आया ? 'उनमें मुनि,...' मुनि भी आये, सभा में बैठे। 'आर्यिका,...' साध्वी नहीं होती, लेकिन आर्यिका पाँचवा (गुणस्थान)। 'श्रावक, श्राविका, देव, देवी, तिर्यंच बैठते हैं।' लो ! धर्मसभा में सिंह और बाघ तिर्यंच-पशु आते हैं। नाग और बाघ ऐसे बैठते हैं। काले नाग होते हैं वे ऐसे बैठे होते हैं। शान्त.. यह तो सब अचिंत्य प्रकृति की बातें हैं, भाई ! 'प्रभुके अनेक अतिशय प्रकट होते हैं।' अतिशय यानी विशेषता। पुण्य की विशेषता दूसरे से बहुत होती है।

'सभामंडपमें बीच तीन पीठ पर गंधकुटीके बीच...' अपने यहाँ है न ? तीन पीठ होती है। पहली, दूसरी और तीसरी। उसमें ऊपर गंधकुटी होती है। 'बीच सिंहासनपर...' ऊपर होता है। 'कमलके ऊपर अंतरीक्ष प्रभु बिराजते हैं...' लो ! बिना स्पर्श के बिराजते हैं। सिहांसन ऊपर नहीं बिराजते। सिंहासन से अंतरीक्ष ... ऊपर होते हैं।लो ! अंतरीक्ष तो यहाँ दिगम्बर में होता है। यहाँ अंतरीक्ष भगवान है। श्वेताम्बर कहते हैं, हमारा है। अंतरीक्ष तो दिगम्बर में होता है। श्वेताम्बर में ऐसी ऊँची बात कहीं नहीं है। वहाँ तो जहाँ-तहाँ पृथ्वीशिला बर बिराजते हैं, ऐसा आता है। अंतरीक्ष तो यहाँ है। तकरार, तकरार, तकरार... बहुत तकरार, भाई ! धर्म के नामपर भी ऐसा बैर।

'अंतरीक्ष प्रभु बिराजते हैं और आठप्रातिहार्य युक्त होते हैं।' वाणी दिव्यध्वनि आदि आया था न ? अशोकवृक्ष आदि होता है। 'वाणी खिरती है,...' वाणी खिरती है ऐसा लिखा है, देखिये ! वाणी बोलते हैं ऐसा नहीं लिखा है। ॐ ऐसी आवाझ-ध्वनि छूटे। ॐ.. ऐसा ध्वनि। ऐसा छह घड़ी चले। 'उसको सुनकर गणधर द्वादशांग शास्त्र रचते हैं।' उसमें से मुनि जो गणधर हैं, वे वाणी सुनकर बारह अंग की रचना करते हैं। ऐसा उनका-गणधरदेव का क्षयोपशमभाव होता है।

'ऐसे केवलकल्याणकका उत्सव इन्द्र करता है।' यह केवलज्ञान का महोत्सव किया। पहले गर्भ का, फिर जन्म का, फिर दीक्षा का और यह केवलज्ञान का। 'फिर प्रभु विहार करते हैं। उसका बड़ा उत्सव देव करते हैं।' विहार करे तब देव आगे छत्र चलता है... आगे आया न ? इन्द्र जिनकी सेवा करे ऐसे तीर्थंकर... आहा..हा...! 'कुछ समय बाद आयुके दिन थोड़े रहनेपर योगनिरोध कर...' लो ! योगनिरोध हो जाता है। वहाँ अन्दर करना कहाँ है ?

योगनिरोध कंपन स्थिर हो जाता है। 'अघातिकर्मका नाशकर मुक्ति पधारते हैं,...' लो ! ऐसे भगवान की बात है। सेठ कहते हैं न अभी ? इस २५ वर्ष में भगवान के २५०० वर्ष होते हैं तो उसका उत्सव करोगे न ?वह जयंति नहीं है। यह तो महाप्रभु कल्याणक है उसकी बातें हैं। इस दुनिया के साथ कोई मेल खाये ऐसा नहीं है। एक ऐसा भी बोले हैं। भगवान के २५०० वर्ष में ऐसा.. दूसरे की सौ साल की, दोसौ साल की, पाँचसौ साल की बहुतों की मनाते हैं। भगवान की जयंति ? भगवान कौन है ? उनकी जयंति ? उनके तो कल्याणक (होते हैं), बड़े इन्द्र आकर मनाये ऐसे उनके होते हैं। उनके साथ किसीका मिलान नहीं होता। कोई राजा, महाराजा किसका मिलान नहीं होता। ऐसे पुरुष के साथ। सबके साथ गिने जायेंगे, ऐसा लिखते हैं।

'तत्पतश्चात् शरीरका अग्नि संस्कार...' भगवान अघाति का नाश कर मुक्ति पधारे। 'तत्पश्चात् शरीरका अग्नि संस्कारकर इन्द्र उत्सवसहित...' लो ! यह पाँचवां। गर्भकल्याणक, जन्मकल्याणक, दीक्षाकल्याणक, केवल और निर्वाण। पंच कल्याणकवाले तीर्थंकर की बात यहाँ ली है। ऐसे तीर्थंकर ऐसे होते हैं। बहुत सुनना (था), बेचारे को... 'चन्द्रकान्त' कहता था, मुझे अरहंत का सुनना है।लेकिन कल ऐसा हो गया। कल उनकी आहार की भावना थी न। पूजा की। कल तो अच्छा था। शरीर का कहाँ भरोसा है, किस क्षण छूट जाय। आहा..हा...!

अरे..! मोह में जीवन ऐसे ही चला जा रहा है। आत्मा का क्या करना वह रह जाय (और) ऐसे ही कमाना और खाना और व्यापार ॅ-धंधा। जीवन उसीमें चला जाय। उसमें अचानक देह छूट जाय। आहा..हा..! वह कहाँ जाय ? जो करना था वह किया नहीं और नहीं करने का था वह किया। आहा..हा...! ऐसा दुर्लभ मनुष्यदेह। मनुष्यदेह दुर्लभ है। आहा..हा...! अनन्त काल के बाद प्राप्त होता है। उसमें आत्मा का (हित) करना है वह करे नहीं और यह सब हो बाद में मन की मन में रह जाय। आहा..हा...!

'इसप्रकार तीर्थंकर पंच कल्याणककी पूजा प्राप्तकर,...' लो ! 'अरहंत होकर निर्वाणको प्राप्त होते हैं...' वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं। बहुत सुन्दर परिभाषा है। पहले से अन्त तक। अब बोधपाहुड का अन्तिम ग्यारहवां बोल रहा।

अब ११ वां बोल लेते हैं। बोधपाहुड में अंतिम। 'प्रव्रज्याका निरूपण करते हैं,...' चारित्र केसा होता है। प्रव्रज्या यानी चारित्र। भगवान के मार्ग में चारित्र कैसा होता है ? 'उसको दीक्षा कहते हैं।प्रथम ही दीक्षाके योग्य स्थानविशेषको...' कि जिसमें दीक्षा ले और दीक्षावाले

रहे। 'दीक्षासहित मुनि जहाँ तिष्ठते हैं, उसका स्वरूप कहते हैं :-' बोधपाहुड का यह अंतिम बोल है।

सुण्णहरे तरुहिट्ठे, उज्जाणे तह मसाणवासे वा।

गिरिगुह गिरिसिहरे वा, भीमवणे अहव वसिते वा।।४२।।

१सवसासत्तं तित्थं, २वचचइदालत्तयं च वुत्तेहिं।

जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा विंति।।४३।।

पंचमहव्वयजुत्ता, पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।

सज्झायझाणजुत्ता, मुणिवरवसहा णिइच्छन्ति।।४४।।

आहा..हा...! बोधपाहुड में प्रत्येक की सत्य बात का वर्णन किया है। कहते हैं कि जैनदर्शन अर्थात् परम पदार्थ की स्थितिवाला दर्शन, जैसी वस्तु की स्थिति (है) उसे जानकर जैनदर्शन जो है, उसमें मुनि कैसे होते हैं, उसके संत कैसे होते हैं। पहले अरहंत की परिभाषा की। अब यह मुनि की परिभाषा की है। 'सुना घर,...' उसमें रहे। आहा..हा..! यहाँ तो बड़े बंगले में, पाँच-पाँच लाख के बंगले हो।

मुमुक्षु :- वह भी कोई मनुष्य नहीं हो तो सुना कहलाये न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- मनुष्य नहीं है। शहर में बड़े मकान। अरे..! कोई व्यवहार का ठिकाना नहीं।मुनि तो जंगल में बसते हैं। सुने घर में रहे। आहा..हा...! अंत में एक शब्द आयेगा। समझ में आया ? थोड़ी देर आये। जंगलमें से आहार लेने आये तब थोड़ी देर बस्ती में रहे। बाकी तो सूने घर में रहे। कोई नहीं होता। अकेले भूत और प्रेत जहाँ बसते हो वहाँ मुनि रहे। आहा..हा...! संसारी जहाँ बंगले और महल में झूले में झूलते हो और चारों ओर हवा पानी हो। क्या कहते हैं वह सुगन्धवाली आती है ? गर्मी के मौसम में बाँधते हैं न ? बाँस की फट्टियों का परदा। सुगन्धवाले परदे। तब ये मुनि पुराने घर में रहे। ऐसे सब मकान, बँगला और हवा-पानी... आहा..हा...! उजाला.. उजाला..

यहाँ दरबार आये थे न ? 'कृष्णकुमार'। यह मकान तो ९ हज़ार का है। यह कोई बड़ा मकान नहीं है। और वह तो बड़ा एक करोड़ तहसील का शाहुकार। उसे बड़ा महेल था। लेकिन यहाँ घरपर आये थे। वह और 'निर्मलकुमार' दोनों आये थे। (संवत) १९९७ में। गये। 'कृष्णकुमार' तो चल बसे न ? 'भावनगर' दरबार। ऐसा करे तो... आहा..हा...! यह !

दरबार 'कृष्णकुमार' स्वयं बोले। 'निर्मलकुमार' साथ में थे। दोनों आये थेष १९९७ में। यहाँ खडे रहे। मैं यहाँ बैठा था। आ..हा..! ऐसे मकान !महाराज ! आप जंगल में बसते हो ? गाँव में बसेरा करो तो लोगों को लाभ हो। 'कृष्णकुमार' खुद आये थे। दोनों यहाँ खड़े थे। यहाँ 'समयसार' दिया था। 'लीलाधरभाई'ने दिया था। 'लीलाधरभाई'ने वह पतले पन्नोंवाला छोटा 'समयसार' है न, वह दोनों एक-एक दिये थे। 'निर्मलकुमार' को तो कहाँ... यहाँ भी कहाँ पढ़ा होगा। दो दिये थे, दो। आहा..हा...! यह मकान ! उसके पास तो लाखों के बड़े मकान होते हैं। पूर्व का इकट्ठा हुआ पुण्य है न। अन्दर आये तो... आहा..हा...! ऐसा मकान जंगल में !महाराज ! जंगल में बसते हो ? गाँव को लाभ हो (यदि गाँव में रहो तो)। ऐसे बेचारे नर्म थे। चलता है संसार, क्या करें ?

'वृक्षका मूल, कोटर,...' बड़े-बड़े सूखे वृक्ष हो और उसमें कोटर-खाली भाग होता है। ऐसे खाली गड्ढा होता है। अन्दर बैठे। सरपर पेड़ का बंगला। पेड़ का बंगला सरपर होता है। आहा..हा...! है न बड़े कोटर ? अभी भी बड़े-बड़े हैं। एक तो वहाँ 'भरुच' में है। बरगद का पेड़। बड़ा एक मिल में फैला हुआ। 'भरुच' में। एक मिल में। इतनी लम्बी डाल, बड़ा तना। कबीर बड। नाम सुना है। देखा नहीं है। साधु के ढुंढने गये थे। यह तो बहुत साल पहले की बात है। (संवत) १९६०-६५ की। ६०-६५ की बातें हैं। 'बरवाला' के साधु आये थे न ? मैंने पूछा, कहाँ है ? 'कबीरबड' में। वहाँ बड़ा कबीरबड है। ऐसा बड़ा पेड़ होता है उसमें नीचे खाली भाग होता है। मुनि ऐसे होते हैं। बाहर में ऐसी स्थिति होती है। बंगले में रहे। रंग किया हुआ पातरा रखे, जैसा मन हो वैसा आहार (ले), सबेरे चाय, दोपहर को रोट और शाम को पकोड़ी और पुड़ी। चार-चार बार (भोजन ले)। एय..! '...' ! कितनी देर रहे ? चार-चार बार आहार ले न ?सुबह चाय, दोपहर में... यह 'चेतनजी' है न, साथ में थे न ? आहा..हा...! भाई !मुनि तो उसे कहें कि जिन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का उफ़ान अन्दर प्रगट हुआ है। आनन्द की मौज, अतीन्द्रिय आनन्द की मौज प्रगट हुई है। उसे मुनि कहते हैं। और वह भी अतीन्द्रिय आनन्द उग्र हो गया है।

कहते हैं, वे वृक्ष के मूल की कोटर में रहते हैं। 'उद्यान वन,...' में रहे। राजा के बड़े उद्यान होते हैं। बाहर रहे। वन में रहे। 'स्मशानभूमि,...' में रहे। आहा..हा..! मूर्दे को जलाते हो। वैराग्य... वैराग्य.. वैराग्य। 'पर्वतकी गुफा,...' पर्वत में गुफा होती है न ? ऐसे में मुनि रहे। 'पर्वतका शिखर,...' पर्वत की चोटी पर जाकर ध्यान में बैठे। जहाँ शेर, बाघ चारों ओर से गर्जना करते हो। बड़े शेर हो तो भी शान्त.. शान्त.. शान्त.. 'एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां'।लो ! ऐसा आता है न 'श्रीमद्' में ?

एकाकी विचरतो वळी स्मशानमां,

वळी पर्वतमां वाघ-सिंह संयोग जो,

अडोल आसन ने मनमां नहि क्षोभता।

देखिये ! 'श्रीमद्' भावना भाते हैं। 'श्रीमद् राजचंद्र' गृहस्थाश्रम में रहते-रहते भावना भाते हैं कि अहो..! यह दशा हमें कब आये ?समझ में आया ?

अडोल आसन न मनमां नहि क्षोभता,

परम मित्रनो जाणे पाम्या योग जो।

शेर और बाघ आये, तो शरीर हमें नहीं चाहिये। उसे चाहिये तो हमारा मित्र है। आहा..हा...! ऐसी मुनि की दशा होती है, बापू ! पण्डितजी ! 'श्रीमद्' गृहस्थाश्रम में भावना भाते हैं।

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे ?

क्यारे थईशुं बाह्यांतर निर्ग्रंथ जो,

सर्व भावनुं बंधन तीक्ष्ण छेदीने

विचरशुं कव महत् पुरुष ने पंथ जो।

आहा..हा..! मूर्दे को उठाकर स्मशान में ले जाय।हम चलकर स्मशान में जायेंगे। ऐसी वीतरागदशा मुनि को होती है। समझ में आया ? शरण.. शरण.. शरण.. भगवानआत्मा है। उस शरण में विशेष निवृत्ति से अन्दर जाने हेतु जंगल में वनवास करेंगे। आहा..हा..! समझ में आया ?

बड़े राजकुमार होते हैं। उन्हें इन्द्राणी जैसी तो देवी होती है। ... और मणिशिला। लादी की जगह रत्न की तो शिलाएँ होती है। रानियाँ ३२-३२ रानियाँ, हज़ार-हज़ार रानियाँ। माता ! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ती। मेरी चैन की दशा मेरे में है। माता ! आज्ञा दे। आहा..हा...! मेरा भगवान मेरे पास है। मेरी रानी-निर्मल परिणति मेरे पास है। आहा..! मैंने अनन्त काल उसका विरह सहा। अब उस विरह को छोड़ता हूँ।माता ! एकबार आज्ञा दो। आहा..हा...! देखिये ! वह वैराग्य कैसा होगा ! 'क्षण लाखेणी रे जाय। माता एक क्षण भी स्वरूप साधन के लिये लाखों की जा रही है।' ऐसी दशा मुनि की (होती है)। आहा..हा...! धन्य जिनका अवतार

! धन्य जिनके माता-पिता और कुटुम्ब जिनका धन्य हो गया। आहा..हा...! समझ में आया ? वह मुनिदशा बापू ! अलग जाति की है। किसीको भी मुनि-साधु मान ले, उसकी उसे खबर नहीं। आहा..हा..!

कहते हैं, मुनि यहाँ रहते हैं। कहाँ ? 'पर्वतका शिखर, भयानक वन...' जिसमें भूत और पिशाच चिल्लाते हों, पुकार करते हो। उसके वन में बसते हैं। हमारे पास से क्या कोई ले जायेगा। मूर्दे को बिजली का भय होता है ? वैसे यहाँ तो शरीर मुर्दा है। हम तो चैतन्यअमृत के सागर को साधने निकले हैं। आहा..हा...! मुर्दे को बिजली का भय (नहीं होता)। अपने में कहते हैं, नहीं कहते ? मुर्दे को बिजली का भय होता है कि बिजली गिरेगी ? लेकिन मर गया है, अब क्या है ? इसप्रकार शरीर को जहाँ मरा हुआ मुर्दा भासित किया है। मुझे और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा..हा...! ऐसी दशा। भयानक वन में जाकर संतों आत्मा को साधते हैं। अरे..रे..! कितना फ़र्क़ पड़ गया।मुनिपने की दशा को कहाँ मान ली। आहा..हा...! सियार ने बाघ का चमड़ा पहना। सियार-सियार होता है न ? सियार को क्या कहते हैं ? गिदड़। गिदड़ ने बाघ का चमड़ा पहना तो क्या बाघ हो जाता है ? वैसे पामर दृष्टिवाले और पामर भाववाले साधु का वेश पहने तो क्या साधु हो जाता है ? देखिये ! वह मुनि की परिभाषा कही। अरहंत की कही। मुनि, ... मुनि की परिभाषा ऐसी होती है। 'कुन्दकुन्दाचार्य' की शैली ही कोई अलौकिक ! अलौकिक !

कहते हैं, 'भयानक वन और वस्तिका...' वस्तिका में भीक्षा के लिये थोड़ी देर गये होते हैं। 'इनमें दीक्षासहित मुनि ठहरें।' दीक्षा नग्नपना धारणकरे ऐसे में रहे। आहा..हा...! 'ये दीक्षायोग्य स्थान है।' ऐसे दीक्षायोग्य स्थान में रहे। दीक्षा देने का स्थान भी ऐसा होता है। पुनः 'स्वशासक्त अर्थात् स्वाधीन मुनियोंसे आसक्त...' मुनि जिस क्षेत्र में स्वतंत्र रहे वह 'जो क्षेत्र उन क्षेत्रोंमें मुनि ठहरे। जहाँसे मोक्ष पधारे इसप्रकार तो तीर्थस्थान...' वहाँ भी मुनि जाय, तीर्थस्थान में। लो ! यह एकबार पूछा था। संतबाल है न ? भाई !संतबाल प्रतिमा का विरोध बहुत करते थे न ? प्रतिमा नहीं है, नहीं है। पहले हम आये थे तब आये थे। '...' कहे, क्या करते हो यह ?शास्त्र में प्रतिमा नहीं है, नहीं है, ऐसा कहते हैं। मैंने कहा, यह रहा। यह उस दिन बताया था, कहा था। जिनभवन। यह उसमें है न ? 'जिणमग्गे.. जिणमग्गे' जिनभवन है कि नहीं ? यदि मूर्ति नहीं हो तो जिनभवन आया कहाँ-से ? (संवत) १९९१ में जब आये थे तब (यह बताया था)। उस वक्त मूर्ति का विरोध बहुत किया था न ? फिर तो उन्होंने कबुल किया था कि मूर्ति है तो सही। .. उस वक्त बराबर योग ऐसा था। यहाँ से निकलना और वहाँ उन्होंने कहा।इसलिये लोगों को ऐसा हो गया कि ओहो..! मूर्ति नहीं है, मूर्ति नहीं है। 'कल्याणजी' उसे कहे, संतबाल यह क्या करते हो ? कहीं नहीं है ? अरे..!

'कुन्दकुन्दाचार्य' के पाठ में है, कहा। यह गाथा उस दिन कही थी। यह है न ? 'जिणभवणं अह वेज्झं, जिणमग्गे जिणवरा', ४३ वीं गाथा। कहाँ गये, 'वासुदेव' ? क्या कहा ?सुनने में देर हुई। आपके मकान में यह कहा था। (संवत) १९९१। यह गाथा कही थी। 'कल्याणजी' और वह आये थे। पहलीबार आये थे न। बाहर से आये थे। यह क्या कहते हैं ? ... ही है। तीर्थंकर का मन्दिर है, प्रतिमाएँ भी हैं। नहीं माने.. इन्होंने टीका में बहुत लिखा है। .. सूत्र है न ? टीका में। ... नहीं मानते। नरकम् गच्छंति। .. विपरीत है, वह तो बिलकूल जूठ बात है।

कहते हैं, 'तीर्थस्थान और वच, चैत्य, आलय, इसप्रकार त्रिक जो पहिले कहा गया है अर्थात् आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी मुनि, अरहंत, सिद्ध स्वरूप उनके नामके अक्षररूप मंत्र...' अक्षररूप मंत्र होते हैं न ? यह पुस्तक। 'तथा उनकी आज्ञारूप वाणीको 'वच' कहते हैं...' वचन। वचन की प्रतिमा स्थापित करते हैं न ? यहाँ वचन स्थापित किये हैं न ? 'समयसार'। 'तथा उनके आकार धातु-पाषाणकी प्रतिमा स्थानको चैत्य कहते हैं...' लो ! एक दिन देर गई। क्यों हुई ? समझ में आया ? भाई तो कहते थे, कल आयेंगे। ऐसा कहा।

कहते हैं , वीतराग की वाणी का भी जहाँ स्थान होता है वह भी एक धर्मस्थान कहने में आता है। दीक्षा के योग्य स्थान है और उसमें ध्यान करने के लिये मुनि भी बसते हैं। उसप्रकार भगवान की पाषाण प्रतिमा। वैसे मन्दिर हो वहाँ भी ध्यान करने का वह स्थान है। दीक्षा देने का भी वह स्थान है। देखिये ! प्रतिमा 'कुन्दकुन्दाचार्य' स्वयं स्थापित करते हैं। नया नहीं है। अनादि की मूर्ति है। लेकिन उसकी मर्यादा इतनी है कि भक्तिभाव आये वह शुभभाव होता है। इतनी बात। ध्यान के लिये एकाग्र...

'प्रतिमा तथा अक्षर मंत्र वाणी जिसमें स्थापित किये जाते हैं इसप्रकार आलय...' तीन लिया न ? वच-चैत्य और आलय। वचन, भगवान की वाणी के वचन, वह जहाँ रहते हैं उसका भी स्थान, प्रतिमा का स्थान और दोनों का स्थान, ऐसा कहकर आयतन कहा। ऐसे आयतन में मुनि बसे अथवा उसका ध्यान करे। 'आलय-मंदिर, यंत्र या पुस्तकरूप ऐसा वच, चैत्य तथा आलयका त्रिक है...' लो ! 'अथवा जिनभवन अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर...' मेरु पर्वत आदि में शाश्वत मंदिर होते हैं वहाँ भी मुनि ध्यान करने जाते हैं। शाश्वत प्रतिमाएँ होती हैं। मणिरत्न की प्रतिमा होती हैं। समझ में आया ? मणिरत्न के मंदिर और मणिरत्न की प्रतिमाएँ। जिनभवन ऐसे होते हैं। लो !

'जिनभवन अर्थात् अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर इसप्रकार आयतनादिक उनके समान ही उनका व्यवहार उसे जिनमार्गमें जिनवर देव 'वेध्य' अर्थात् दीक्षासहित मुनियोंके ध्यान करनेयोग्य, चिन्तन करने योग्य कहते हैं।' लो ! दीक्षा देने लायक है, दीक्षा देनेवाले वहाँ ध्यान करते हैं और दीक्षावाले उसका चिंतवन, भक्ति आदि भी करे। इसलिये इसे जिनभवन आदि कहने में आया है। ये मुनि ऐसे होते हैं। ऐसे में ध्यान में-आनन्द में रहें उन्हें मुनि कहते हैं।

(श्रोता :- प्रमाण वचन गुरुदेव !)